बहुरूपी मलेरिया : दवा की तलाश

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

अधेड़ और बुजुर्ग लोगों को शायद याद होगा कि 1950 के दशक में राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के ज़रिए स्वास्थ्य की एक ज़बर्दस्त पहल की गई थी। देश के कोने-कोने में स्वास्थ्य कार्यकर्ता मच्छरों का सफाया करने हेतु डीडीटी व अन्य कीटनाशकों का छिड़काव किया करते और घर-घर जाकर कुनैन की गोलियां बांटा करते थे। मज़ेदार बात यह कि इन कड़वी गोलियों को गटकने के लिए वे हमें मुफ्त चाय भी पिलाया करते थे।

कुल मिलाकर यह राष्ट्रीय प्रयास सफल रहा और 1960 के दशक तक भारत ने मलेरिया के खिलाफ जंग जीत ली थी। दरअसल आज़ाद भारत ने चेचक, टीबी, घेंघा आदि कई बीमारियों के खिलाफ जंग छेड़ी थी। चेचक का सफाया हो चुका है और आयोडीन नमक की बदौलत घेंघा का प्रकोप भी बहुत कम हो गया है। टीबी के खिलाफ जंग अभी जारी है किन्तु मलेरिया का इतिहास काफी उतार-चढ़ाव वाला रहा है। जिस जंग को जीता हुआ माना जा रहा था, उसे आज फिर से लड़ने की नौबत आ गई है। भारत में ही नहीं वरन पूरी दुनिया में मलेरिया ज़्यादा सशक्त होकर लौटा है। दुनिया की लगभग 40 प्रतिशत आबादी मलेरिया ग्रस्त इलाकों में रहती है। प्रति वर्ष मलेरिया के लगभग 50 करोड़ प्रकरण सामने आते हैं और मलेरिया की वजह से प्रति वर्ष लगभग 30 लाख लोग जान से हाथ धो बैठते हैं।

मलेरिया का प्रमुख जानलेवा परजीवी है *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपैरम*। यह परजीवी मच्छरों के शरीर में पलता है और मच्छर के काटने पर हमारे खून में प्रवेश कर जाता है। आजकल *प्लाज़्मोडियम* के ऐसे उत्परिवर्तित रूप उत्पन्न हो गए हैं जो कुनैन तथा उससे सम्बंधित औषधियों क्लोरोक्विन और मेफ्लाक्विन के प्रतिरोधी हैं। फाल्सीपैरम के ये नए संस्करण बच्चों और माओं पर ज़्यादा असर डालते हैं। इसके अलावा *प्लाज़्मोडियम* की एक और प्रजाति *प्लाज़्मोडियम वाइवैक्स* है जो काफी घातक है और मस्तिष्क व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर असर डालती है। दवा प्रतिरोधी मलेरिया परजीवी के उभरने के कारण यह ज़रूरी हो गया है कि इस खतरनाक बीमारी से निपटने के नए तरीके खोजे जाएं।

सवाल यह है कि मलेरिया की समूल समाप्ति के लिए क्या रणनीति अपनाई जानी चाहिए। एक सम्भावना यह है कि मलेरिया परजीवी की किसी ऐसी प्रक्रिया को निशाना बनाया जाए जो उसके जीवन के लिए अनिवार्य हो। इस प्रक्रिया का सम्बंध उसकी पोषण प्राप्ति से हो सकता है या कोशिका संघटन के कार्य से। दूसरी सम्भावना यह है कि एक टीका इज़ाद कर इंसानों को लगाया जाए ताकि हमारा शरीर मलेरिया परजीवी की कोशिका के किसी विशिष्ट लक्षण को पहचानकर उसके विरुद्ध एण्टीबॉडी का निर्माण करे। ये एण्टीबॉडी परजीवी को चट कर जाएंगी। एक सम्भावना यह भी है कि परजीवी

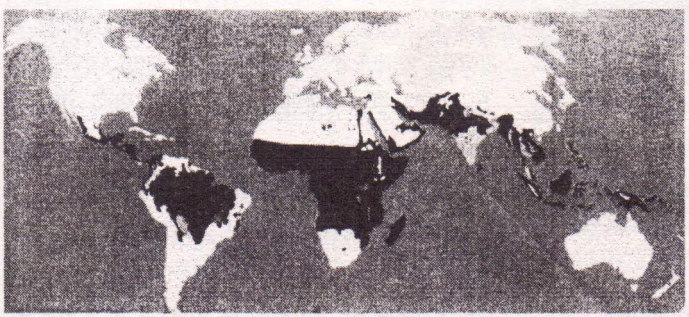

दुनिया भर में अपने पांव जमाए यह रोग हर साल तकरीबन 50 करोड़ लोगों को बीमार करता है और 30 लाख लोगों की मौत का कारण बनता है। लगभग सभी शिकार नम व कटिबंधीय क्षेत्रों में रहते हैं। 1970 में कीटनाशकों के प्रतिरोधी बन चुके मच्छरों की बदौलत इस रोग ने एक बार फिर सिर उठाया। यह नक्शा 1976 के आकड़ों के हिसाब से बना है। सूखे और पहाड़ी क्षेत्रों में जहां मच्छरों का संवर्धन आम तौर पर नहीं होता, यह रोग नदारद है।

मलेरिया से संघर्ष की मौटे तौर पर तीन रणनीतियां हैं - परजीवी पर दवाइयों से हमला; परजीवी के विरुद्ध टीके का विकास और कीटनाशकों की मदद से अथवा प्रजनन स्थलों को समाप्त करके मच्छरों का सफाया।

को छोड़कर हम उसके वाहक अर्थात मच्छर को अपना निशाना बनाएं। इसके लिए कीटनाशकों की मदद ली जा सकती है। इसके अलावा यह भी प्रयास किया जा सकता है कि पानी की निकास व्यवस्था दुरुस्त करके जगह-जगह ठहरे पानी के डबरे आदि समाप्त कर दिए जाएं। यही डबरे, गड्ढे वगैरह मच्छरों के प्रजनन स्थल बनते हैं। गौरतलब है कि हमारे पड़ोसी श्रीलंका ने इस तकनीक का उपयोग करके काफी हद तक मच्छरों पर काबू पा लिया है। यह विडम्बना ही है कि भारत में राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के तहत ये कदम 50 वर्ष पहले उठाए गए थे लेकिन फिर हमने ढिलाई बरतना शुरू कर दी।

मच्छरों पर निशाना

मलेरिया से संघर्ष की मौटे तौर पर तीन रणनीतियां हैं - परजीवी पर दवाइयों से हमला; परजीवी के विरुद्ध टीके का विकास और कीटनाशकों की मदद से अथवा प्रजनन स्थलों को समाप्त करके मच्छरों का सफाया। कुछ लोग मच्छरों पर कुछ अन्य चतुराई भरे प्रयोग कर रहे हैं। एक दल प्रयास कर रहा है कि मच्छरों को जिनेटिक रूप से इस तरह परिवर्तित किया जाए कि वे परजीवी को ढोने में असमर्थ हो जाएं। एक अन्य दल 'ट्रांसपोज़ॉन टेक्नॉलॉजी' का उपयोग करके यह प्रयास कर रहा है कि मच्छर अपने शरीर में मौजूद परजीवियों को खत्म करने लगें। तीसरा समूह विकिरण के द्वारा मच्छरों को बांझ बनाने में तुला हुआ है। फिर इन मच्छरों को लाखों की तादाद में प्रजनन स्थलों के आसपास छोड़ा जाए। इस विधि से शायद 5-6 पीढ़ियों में पूरी आबादी नष्ट हो जाएगी।

1980 में मॉरिशस के एक अखबार में छपे इस कार्टून में विराजमान हैं मलेरिया विजेता और परास्त मच्छर। नौ साल पूर्व सर रोनॉल्ड रॉस सिद्ध कर चुके थे कि मलेरिया मादा एनोफिलीस के काटने से फैलता है। मॉरिशस में 40 सालों से मलेरिया का तांडव चल रहा था। इसे देखते हुए रॉस को यहां का न्यौता दिया गया था। उन्होंने आदेश दिया कि मच्छर के संवर्धन स्थलों को सुखा दिया जाए। इस तरह थमा यह तांडव।

दूरस्थ गांवों में *एनोफिलीस* मच्छर के सफाए हेतु कीटनाशक - छिड़काव की सवारी। गहन प्रयासों के बावजूद 1976 में भारत में 45 लाख मलेरिया के मामले दर्ज किए गए थे।

इंसानों के लिए टीका

कई दल मलेरिया के खिलाफ टीका बनाने की कोशिश में लगे हैं। प्रत्येक दल उस घटक पर ध्यान देता है जिसे वह परजीवी के संघटन या शरीर के

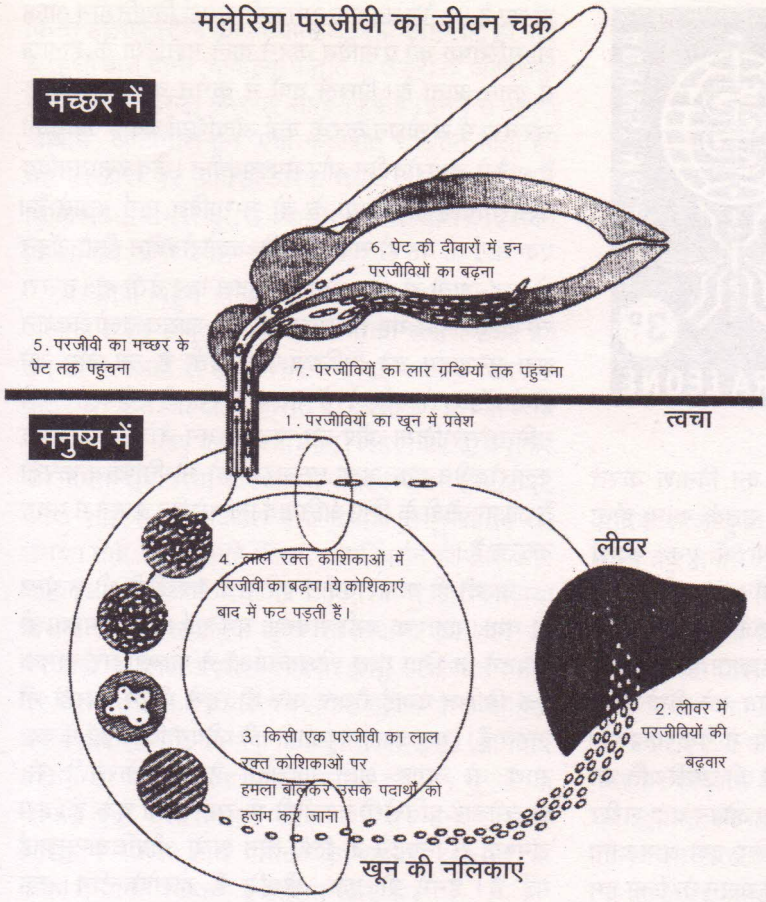

रासायनिक गठन के लिए अनिवार्य मानता है। इसके बाद इसी अनिवार्य घटक को एण्टीजन मानकर एक ऐसा टीका बनाने का प्रयास किया जाता है जो इस एण्टीजन के विरुद्ध एण्टीबॉडी बनाए। इंडियन काउन्सिल ऑफ जिनेटिक इंजीनियरिंग एण्ड बायोटेक्नॉलॉजी (आई.सी.जी.इ.बी.), दिल्ली के डॉ. वीर चौहान परजीवी में पाई जाने वाली पेप्टाइड शृंखला को एण्टीजन मानकर एक ऐसा टीका बनाने की कोशिश कर रहे हैं जो इस शृंखला की शिनाख्त कर सके। एक अन्य दल परजीवी की कोशिका की सतह पर पाए जाने वाले कुछ घटकों को एण्टीजन मानकर आगे बढ़ रहा है। टीका बनाने वालों के सामने सबसे बड़ी दिक्कत यह आती है कि अपने जीवन चक्र के दौरान परजीवी अपनी सतह को कई बार बदलता है। सी.डी.एफ.डी., हैदराबाद के डॉ. सैयद हस्नेन और सी.डी.सी., एटलाण्टा के डॉ. अलताफ लाल इस समस्या से निपटने के लिए यह तरकीब अपना रहे हैं कि एक ऐसी जीन बनाएं जो दस गुणों को एक में समेट ले। यह जीन-संकुल कई सारे प्रोटीनों के खण्ड का कोड होता है। ये वे प्रोटीन हैं जिन्हें *प्लाज़्मोडियम* अपने जीवन चक्र के दौरान समय-समय पर दर्शाता है। जब यह जीन-संकुल अभिव्यक्त होगा तो वह एक साथ कई सारे एण्टीजन से मिलकर बना होगा। चूंकि फिलहाल मलेरिया के लिए कोई टीका नहीं है इसलिए इस अनुसंधान के परिणामों की आतुरता से प्रतीक्षा है।

परजीवी के खिलाफ औषधि

परजीवी के खिलाफ औषधि विकसित करना तीसरा मोर्चा है। अतीत में औषधियों की पहचान व विकास एक पेचीदा काम था। इसमें मुख्यतः यही तरीका अपनाया जाता था कि एक-एक पदार्थ लेकर परीक्षण करते जाएं। कभी-कभी लोक चिकित्सा प्रथाओं से भी मदद मिलती थी। दरअसल कुनैन इसी प्रकार खोजी गई थी। ब्रिटिश हुक्मरानों ने सुना कि ईस्ट इंडीज़ में मलेरिया के इलाज के लिए सिंकोना के वृक्ष की छाल के काढ़े का उपयोग किया जाता है। इस काढ़े के रासायनिक विश्लेषण से औषधि प्राप्त हुई। अलबत्ता जीवविज्ञान और रसायनशास्त्र में हुई तरक्की के फलस्वरूप दवाइयों की खोज व विकास का काम अपेक्षाकृत तर्कसंगत हो गया है।

मलेरिया परजीवी मानव रक्त और लीवर में अपना जीवनचक्र पूरा करता है। यह परजीवी हमारी रक्त कोशिकाओं को तोड़ता है और उनके रस का सेवन

मलेरिया के विरुद्ध छेड़ी जेहादः1962 में प. अफ्रीका के रिपब्लिक ऑफ सियरा लियोन में जारी डाक टिकट

करता है। किन्तु रक्त कोशिकाओं का विनाश करते समय परजीवी को एक चीज़ के प्रति सतर्क रहना होता है - हमारी लाल रक्त कोशिकाओं में एक पदार्थ हीमोग्लोबीन होता है। इस हीमोग्लोबीन के एक घटक 'हीम' में लौह तत्व होता है। यह हीम परजीवी की कोशिका के आवरण में छेद करके उसे मार डालता है। परजीवी की रणनीति यह होती है कि इस हीम को हीमोज़ॉइन नामक रंजक के एक पुलिंदे के रूप में पैक कर दे। दरअसल यही रंजक खून में परजीवी की उपस्थिति का चिन्ह होता है। चूंकि यह परजीवी अपना जीवन चक्र शरीर के कई हिस्सों में पूरा करता है, इसलिए इसे थाम पाना मुश्किल हो जाता है। इस परजीवी को मारने के लिए हम जो भी दवा इस्तेमाल करें, वह लीवर के लिए हानिकर नहीं होनी चाहिए, उससे एनीमिया (खून की कमी) उत्पन्न नहीं होना चाहिए और सिर्फ परजीवी मारा जाना चाहिए। अपना जीवन चक्र पूरा करते हुए यह परजीवी अपनी आकृति, आकार व सतह का आवरण बदलता रहता है और साथ ही अपनी शारीरिक रासायनिक क्रियाएं भी बदलता रहता है। इस परजीवी के विरुद्ध औषधि का विकास करने वालों को इन विभिन्न अवतारों का ख्याल करना पड़ेगा।

दवा-प्रतिरोधी परजीवी

मलेरिया के खिलाफ कारगर सबसे पहली औषधि कुनैन थी। रोचक बात यह है कि हम आज भी नहीं जानते कि यह दवा काम कैसे करती है। समस्या यह है कि दुनिया के कई हिस्सों में मलेरिया परजीवी इस दवा के प्रतिरोधी हो गए हैं। कुनैन का एक समरूपी पदार्थ क्विनिडीन आज भी मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले मलेरिया के इलाज में काम आता है। पिछले वर्षों में कुनैन की रासायनिक संरचना में संशोधन करके कई औषधियां बनाई जा चुकी हैं - जैसे क्लोरोक्वीन और मेफ्लाक्वीन। जैव रसायनविद क्लोरोक्वीन की क्रिया के दो सम्भावित मार्ग बताते हैं। एक मार्ग तो यह हो सकता है कि क्लोरोक्वीन हीमोज़ॉइन से जुड़ जाती हो और हीम को मुक्त कर देती हो। दूसरा सम्भावित मार्ग यह हो सकता है कि शायद क्लोरोक्वीन उस एन्ज़ाइम को निष्क्रिय कर देती है जो हीम को हीमोज़ॉइन से जोड़ने में मदद करता है। बैंगलोर की नमिता सुरोलिया और जी. पद्मनाभन ने दर्शाया है कि क्लोरोक्वीन एक अन्य एन्ज़ाइम को भी निष्क्रिय करती है जो परजीवी के लिए अनिवार्य एक प्रोटीन बनाने में मदद करता है।

जल्दी ही क्लोरोक्वीन प्रतिरोधी परजीवी भी उत्पन्न हो गया। यह एक बड़ी समस्या बन गई। इस समस्या से निपटने के लिए कुछ शोधकर्ताओं ने फान्सीडार नामक एक मिश्रित दवाई तैयार कर दी (इसे पीएम/एसडी भी कहते हैं)। यह दवाई परजीवी की जीवन क्रियाओं में एक साथ दो जगह क्षति पहुंचाती है। बदकिस्मती से, फान्सीडार प्रतिरोधी परजीवी भी सामने आ चुके हैं। इस समस्या से निपटने के लिए तीन अन्य औषधियां सुझाई गई हैं। इनमें से एक औषधि है होलोफेन्ट्रीन। यह फान्सीडार-प्रतिरोधी परजीवी के खिलाफ कारगर है।

मलेरिया में उतार चढ़ाव

1930 के दशक में जब यू.एस. में हर साल एक लाख लोग मलेरियाग्रस्त दर्ज किए जा रहे थे तब मच्छर नियंत्रण कार्यक्रम ने कुछ राहत दी। इसके बाद द्वितीय युद्ध से लौटे रोगग्रस्त लोगों ने कुछ इज़ाफा किया। युद्ध पश्चात क्लोरोक्वीन और कीटनाशक छिड़काव ने रोग प्रसार में फिर मंदी ला दी। इस मंदी में खलल डाला कोरियाई युद्ध से लौटे रोगग्रस्त लोगों ने। इसके बाद फिर मलेरिया में कमी आई जिसे वियतनाम युद्ध ने भंग कर दिया। एक बार फिर रोगग्रस्त लोगों का ग्राफ गिरा जिसे 1973 में बढ़ाया विभिन्न देशों के पर्यटकों ने।

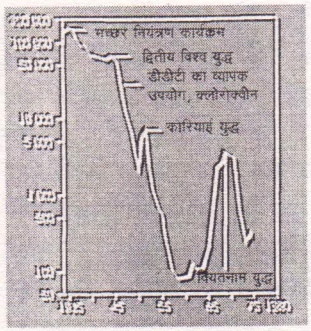

किन्तु होलोफेन्ट्रीन की क्रियाविधि अभी स्पष्ट नहीं हो पाई है। इसी बीच चीनी चिकित्सा पद्धति से उभरी दो औषधियां मलेरिया के विरुद्ध कारगर साबित हुई हैं। इनमें से पहली औषधि, आर्टीमेसिनीन, एक वनस्पति से प्राप्त होती है। यह परजीवी पर ऑक्सीकारक दबाव डालती है। चीनी चिकित्सा से उभरी दूसरी दवाई पायरोमेरिडीन है। इसकी क्रियाविधि अभी स्पष्ट नहीं है।

परजीवी बहुत तेज़ी से प्रजनन करते हैं। इसके अलावा इनमें अनुकूल उत्परिवर्तन का लक्षण होता है। इन दोनों वजहों से इनमें किसी भी नई दवा के खिलाफ प्रतिरोध बहुत जल्दी विकसित हो जाता है। इस समस्या से निपटने के लिए क्या किया जाए? नेहरू सेंटर, बैंगलोर की नमिता सुरोलिया और उनके पति इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स के अवधेश इसी चुनौती से मुखातिब थे। उनका तर्क था कि चाहे जितने उत्परिवर्तन हो जाएं और चाहे जितनी किस्में पैदा हो जाएं, किन्तु शरीर क्रिया अथवा जैव रासायनिक कुछ तो लक्षण ऐसे होंगे जो परजीवी के लिए अपरिहार्य होंगे। इनमें उत्परिवर्तन होने पर उस परजीवी का अस्तित्व संकट में पड़ जाना चाहिए। दरअसल औषधि निर्माण की दृष्टि से इन्हीं अनिवार्य प्रक्रियाओं को निशाना बनाया जाना चाहिए। सुरोलिया दम्पति एक ऐसा लक्षण खोज पाए हैं। उन्होंने *नेचर मेडिसीन* नामक शोध पत्रिका के फरवरी 2001 के अंक में अपने निष्कर्ष प्रकाशित किए हैं।

परजीवी की दुखती रग

परजीवी की दुखती रग शायद उसकी कोशिका के एपिकोप्लास्ट नामक प्रकोष्ठ में है। इस विचित्र उपांग (एपिकोप्लास्ट) के बारे में माना जाता है कि दरअसल अतीत में कभी किसी बैक्टीरिया ने इस परजीवी के शरीर में घुसपैठ की थी। अन्दर घुसने के बाद इस बैक्टीरिया ने अपनी उपयोगिता साबित कर दी और धीरे-धीरे मलेरिया परजीवी और घुसपैठी बैक्टीरिया के बीच सहजीवी सम्बंध बन गया। अर्थात एपिकोप्लास्ट कई मायनों में पौधों में उपस्थित क्लोरोप्लास्ट तथा जन्तुओं व पौधों दोनों में पाए जाने वाले मायटोकॉण्ड्रिया के समान है।

सभी कोशिकाओं को अपना ढांचा बनाने के लिए वसीय अम्ल नामक पदार्थों की ज़रूरत होती है।

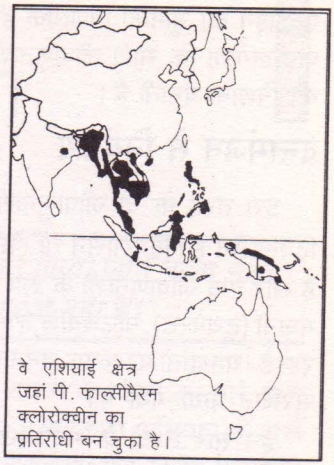
वे एशियाई क्षेत्र जहां पी. फाल्सीपैरम क्लोरोक्वीन का प्रतिरोधी बन चुका है।

अधिकांश जन्तुओं में बगैर किसी बाहरी मदद के ये वसीय अम्ल बन सकते हैं। किन्तु *प्लाज़्मोडियम* परजीवी समेत कई जीव ऐसे हैं जो वसीय अम्लों के लिहाज़ से आत्मनिर्भर नहीं हैं। वसीय अम्लों के निर्माण हेतु जिन एन्ज़ाइम की ज़रूरत होती है, उनमें से कुछ के लिए ये जन्तु एपिकोप्लास्ट पर निर्भर होते हैं। एपिकोप्लास्ट पर इन कोशिकाओं की इस निर्भरता को हाल ही में पहचाना गया है। मेलबोर्न विश्वविद्यालय के जेफर्स मैक्फैडेन ने यह इंगित किया है कि नई दवाइयों का लक्ष्य एपिकोप्लास्ट हो सकता है।

किसी रचनात्मक क्रियाकलाप के समान विज्ञान में भी चतुराई इसी बात में है कि कई अलग-थलग विचारों और विधियों को जोड़कर एक समग्र चित्र निर्मित किया जाए। नमिता और अवधेश ने यही किया। उन्होंने परजीवी के एपिकोप्लास्ट को निशाना बनाया। तर्क यह है कि यह परजीवी किसी भी हाल में एपिकोप्लास्ट में उत्परिवर्तन को झेल नहीं पाएगा। यानी जो दवाई एपिकोप्लास्ट को निष्क्रिय कर देगी, वह परजीवी को निष्क्रिय बना देगी। यह तो पता ही था कि एपिकोप्लास्ट परजीवी में वसीय अम्लों के निर्माण में मदद देता है। इसलिए उन्होंने वसा व वसीय अम्लों के निर्माण में मदद देने वाले एन्ज़ाइम की क्रिया को रोकने वाले पदार्थों की खोज शुरू कर दी। इस संदर्भ में देखा गया कि *ई.कोली* नामक बैक्टीरिया भी एपिकोप्लास्ट पर निर्भर है। मेम्फिस (टेनेसी) के सेन्ट जूड्स अस्पताल के डॉ. आर.जे. हीथ ने दर्शाया है कि *ई. कोली* में वसीय अम्ल उत्पादन में फैब-I नामक

एन्ज़ाइम की भूमिका निर्णायक होती है। उन्होंने यह भी पता लगाया कि सारी जीवाणुनाशी दवाइयां इसी फैब-I को निशाना बनाती हैं।

दन्तमंजन से नियंत्रण

इस तरह के दो जीवाणुनाशी पदार्थ सेरुलेनीन व ट्रिक्लोसैन हैं। ट्रिक्लोसैन तो पिछले दो दशकों से ज्ञात है और एक जीवाणुनाशी के रूप में इसका उपयोग दन्त मंजनों (टूथपेस्ट), माउथवॉश, शैम्पू वगैरह में किया जाता रहा है। यह दांतों पर प्लाक बनने से रोकता है। यह काफी सुरक्षित पाया गया है।

इन सारे तथ्यों के मद्देनज़र सुरोलिया दम्पति ने मलेरिया परजीवी प्लाज़्मोडियम फाल्सीपैरम पर ट्रिक्लोसैन के असर की जांच की। तीन लीटर में 1 मि.ग्रा. ट्रिक्लोसैन घोलने पर भी फाल्सीपैरम परजीवी की वृद्धि रुक गई। इतना ही असर पैदा करने के लिए सेरुलेनीन की 20 गुना सांद्रता का उपयोग करना पड़ा। और सबसे अच्छी बात यह थी कि सेरुलेनीन प्रतिरोधी परजीवी पर भी ट्रिक्लोसैन का असर हुआ।

अगले चरण में उन्होंने चूहों को मलेरिया परजीवी से संक्रमित कराया और फिर उन चूहों पर ट्रिक्लोसैन का असर परखा। मात्र 1 मि.ग्रा. ट्रिक्लोसैन का इंजेक्शन देने पर चूहे 4 दिन में पूरी तरह परजीवी मुक्त हो गए। दूसरी ओर, वे चूहे मात्र 8 दिनों में मलेरिया के कारण मर गए जिन्हें ट्रिक्लोसैन इंजेक्शन नहीं दिया गया था। ट्रिक्लोसैन का कोई साइड असर भी नहीं देखा गया। इस औषधि का असर अपेक्षित विधि से ही हुआ था अर्थात इसने एपिकोप्लास्ट में वसील अम्लों के निर्माण में रुकावट पैदा की थी।

ट्रिक्लोसैन के बारे में सुरोलिया दम्पति के शोध का काफी स्वागत हुआ है। मैक्फैडेन व उनके सहयोगियों ने *नेचर मेडिसीन* के उसी अंक में इस पर अपनी टीप लिखी है। उन्होंने बताया है कि प्रसाधन सामग्रियों में लगातार उपयोग के बावजूद ट्रिक्लोसैन के विरुद्ध प्रतिरोध नहीं पनपा है। वैसे यह भी देखा गया है कि इसकी वजह से *ई. कोली* बेक्टीरिया में अनाप-शनाप उत्परिवर्तन हो जाते हैं। अतः उन्होंने चेतावनी दी है कि ट्रिक्लोसैन का उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। अथवा इसका उपयोग अन्य दवाइयों के साथ मिश्रण के रूप में किया जाना चाहिए ताकि प्रतिरोध की समस्या से बचा जा सके। सुरोलिया दम्पत्ति ने इस बात पर गौर किया है और उन्होंने पाया है कि ट्रिक्लोसैन व सेरुलेनीन एक दूसरे के प्रभाव को बढ़ाते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उनकी खोज से ट्रिक्लोसैन जैसे अन्य ज़्यादा प्रभावशाली पदार्थ खोजने में मदद मिलेगी। इस संदर्भ में गौरतलब है कि एक प्रतिष्ठित दवा कम्पनी ने सुरोलिया दम्पति से सम्पर्क भी स्थापित किया है। *(स्रोत फीचर्स)*

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता शुल्क 150 रुपए कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से एकलव्य, ई-7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 के पते पर भेजें।